Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

आदिवासी : प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षक

डॉ. पुरोहित कुमार सोरी,
सहायक प्राध्यापक–इतिहास
शासकीय गुण्डाधूर स्नातकोत्तर महाविद्यालय,
कोण्डागाँव (छ.ग.)

प्रकृति से मानव का अटूट सम्बन्ध रहा है। प्रकृति से संघर्ष और उसके संरक्षण की बीच ही मनुष्य ने साहित्य, संगीत व विविध कलाओं का सृजन किया है। वर्तमान में पर्यावरण संरक्षण एक बड़ी चुनौती है। एक तरफ हम अपने अस्तित्व की रक्षा हेतु प्रकृति से संघर्ष कर रहे हैं तो वहीं दूसरी ओर उसे ईष्वर मानकर उसकी पूजा–अर्चना कर उसके प्रति अपनी कृतज्ञता एवं कर्त्तव्यनिष्ठा भी प्रकट कर रहे हैं। विकास की पूंजीवादी व्यवस्था ने हमें यह सोचने पर मजबूर कर दिया है कि हम इसका संरक्षण कैसे करे। भारत ही नहीं अपितु पूरे विष्व में इस पर्यावरण संकट से निपटने का प्रयास किया जा रहा है और नित–नये विकास की योजनाएँ तैयार की जा रही है। ऐसे समय में हम यदि उन क्षेत्रों को देखे जहां वन एवं पर्यावरण कुछ बचा है तो वह क्षेत्र है आदिवासियों के निवास स्थल का। उन्होंने इसे अपना ईश्वर मानकर इसकी अराधना की है और अपने आपको प्रकृति का संरक्षक बना रखा है।

आदिवासी वह मानव समुदाय है, जो एक अलग तथा निश्चित भू–भाग में निवास करता है। इनकी अपनी अलग संस्कृति, परम्परा, रीति–रिवाज और भाषा होती है। भारतीय आदिवासियों को अलग–अलग क्षेत्रों मे अलग–अलग नामों से जाना जाता है, जैसे–आदिवासी, आदिमजाति, वनवासी, जनजाति आदि। सन् 1917 से 1931 तक की भारतीय जनगणना में जनजातियों के नामकरण के सन्दर्भों में उत्तरोत्तर संशोधन होते रहे हैं। स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय संविधान में उन्हें अनुसूचित जनजाति कहा गया है।[i]

Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

इम्पीरियल गजेटियर में आदिमजाति को परिभाषित करते हुए कहा गया है–''एक आदिमजाति परिवारों का एक समूह है जिसका एक सामान्य नाम होता है, जिसके सदस्य एक सामान्य भाषा बोलते हैं तथा एक सामान्य क्षेत्र में निवास करते हैं।[ii]

इन आदिवासियो को अलग–अलग क्षेत्रों में अनेक उपनामों से भी जाना जाता है। प्राकृतिक आधार पर इनके क्षेत्र भी अलग हैं, जैसे–उत्तर एवं पूर्वोत्तर क्षेत्र, मध्य क्षेत्र, दक्षिण क्षेत्र। इन्हें उत्तर एवं पूर्वोत्तर में नागा, कुकी, गारो, खासी, थारू, लुषाई आदि। मध्य क्षेत्र में संथाल, उरांव, हो, खोंड, गोंड, कोरकू, भील, मीणा, सहरिया, आदि तथा दक्षिणी क्षेत्र में चेचू, कोया, टोडा, कोटा, इरूला, पनियन आदि कहा जाता है।[iii] इन सभी क्षेत्रों की परिस्थिति की अलग–अलग है, जिस पर वहाँ के प्राकृतिक संसाधन निर्भर करती है।

बस्तर क्षेत्र के आदिवासियों में टोटम व्यवस्था पायी जाती है और इस व्यवस्था के अंतर्गत वे आपस में विभाजित हैं– कवाची, उसेण्डी एवं टेकाम कछिमवंषी है जिनका टोटम कछुआ; मरावी, करंगा, नुरूटी नागवंशी हैं जिनका टोटम कोबरा; इसके अतिरिक्त अन्य गोत्र जैसे सोरी का बाघ तथा नेताम का कुत्ता टोटम होते हैं।[iv] इन जीवधारियों के साथ ही कुछ वनस्पतियों को भी कुटुम्ब के आधार पर टोटम माना गया है, जैसे साल, महुआ, आम, चिरौंजी, इमली आदि।

इसी प्रकार छोटा नागपुर क्षेत्र के आदिवासी मुख्यतः 8 टोटम में विभाजित हैं– सोरेन का टोटम चट्टान या पत्थर, मुरू का टोटम कछुआ, समद का टोटम हिरन, बरलिहा का टोटम विभिन्न प्रकार के फल, घरहड़ का टोटम पक्षी, हंसदा का टोटम मछली, मैल का टोटम गंध और टोपना का टोटम पक्षी के प्रकार हैं। ये नाम दर्शाते हैं कि कैसे कोई जानवर, पक्षी, पौधा या वस्तु एक निश्चित जाति का भाग हो सकता है।[v]

आदिवासियों ने अपने प्राकृतिक एवं परम्परागत रीति–रिवाज और परम्पराओं को इस प्रकार निर्धारित किया है कि यदि उनमें से कोई एक जाति या समूह उसका दोहन करता

Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

है तो दूसरी जाति या समूह उसकी रक्षा करती है। इसका स्पष्ट उदाहरण आदिवासियों की टोटम व्यवस्था में हमें प्राप्त होता है।

इन समूहों द्वारा अपने टोटम को नुकसान पहुंचाना वर्जित है। इससे प्राकृतिक संतुलन भोग–उपभोग के बाद भी बना रहता है। आदिवासियों द्वारावनों से प्राप्त होने वाले वनोपजों को परिपक्य होने दिया जाता है और उसके बाद जब वे फल वृक्ष से अलग होने लगते हैं तब उनका सेवन करने की अनुमति सेवा अर्जी (पूजा पद्धति) के बाद दी जाती है ताकि उस फल से प्राप्त होने वाले बीज भी परिपक्व होकर एक नये पौधे की उत्पत्ति कर सके। यदि उन्हें परिपक्व होने से पहले ही तोड़ लिया जायेगा तो उसके बीज से नये पौधे की उत्पत्ति संभव नहीं होगा। इस प्रकार वे अपने प्राकृतिक संसाधन का उपभोग करने के बाद भी उसकी रक्षा करते हैं।

प्राकृतिक संसाधन आदिवासियों की जीवनयापन और दिनचर्या का मुख्य आधार है। इन संसाधनों के साथ सामंजस्य स्थापित कर आदिवासी अपने सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को स्थानीय स्तर पर स्थापित करते हैं। उनकी यह व्यवस्था आदिकाल से परम्परागत रूप से चली आ रही है, जिसके कारण उनके निवास क्षेत्र में प्राकृतिक संसाधन बड़े पैमाने पर आज भी विद्यमान है। 21वीं सदी के इस दौर में जब हम विकास के नाम पर एक ओर जहाँ प्राकृतिक संसाधनों का बड़े पैमाने पर दोहन कर रहे है, वहीं आदिकाल से निवासरत आदिवासी अपने क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों को बचाये रखने के लिए लगातार वर्तमान व्यवस्थाओं का विरोध कर रहे हैं।

आदिवासियों द्वारा अपने प्राकृतिक संसाधन को बचाये रखने के लिए पूर्व में अनेक विद्रोह एवं आंदोलन किए गए। आदिवासियों के इतिहास का अध्ययन करने पर जिन्हें विद्रोह या आन्दोलन कहा जाता है, इन सभी घटनाओं में एक उद्देष्य सामान्य रूप से पाया जाता है और वह है–''प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा।'' चाहे वो संथाल विद्रोह या मुण्डा विद्रोह हो, चाहे वो राजू–रम्पा का विद्रोह हो या बस्तर का कोई विद्रोह हो, ताना भगत का विद्रोह हो या तिलता मांझी का। ऐसे अनेक उदाहरण हमें इतिहास में मिलते हैं जिनके

Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

मुख्य कारणों में प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना आदिवासियों का एक मुख्य उद्देष्य रहा है। वर्तमान छत्तीसगढ़ राज्य में भी आदिवासियों ने अपने प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा के लिए विभिन्न आन्दोलन किए हैं, जिनमें पोलावरम परियोजना का विरोध, बैलाडीला के नंदराज पहाड़, उत्तर छत्तीसगढ़ का हसदेव वन क्षेत्र की रक्षा, नारायणपुर क्षेत्र की आमदई घाटी और रावघाट बचाओ आन्दोलन प्रमुख है। आदिवासी क्षेत्रो में हुए इन वर्तमान आन्दोलनों का उद्देष्य भी अपने क्षेत्र के प्राकृतिक संसाधनों की रक्षा करना ही है।

वस्तुतः मनुष्य अपने परिवेश की उपज है, उसे बेहतर बनाने के लिए उस परिवेष को बदलना होगा जिसमें वह पलता है, बढ़ता है। इसी परिवेष को आधुनिक समाज ने ''विकास'' शब्द से विभूषित किया है। परन्तु आदिवासी समाज इस विकास को स्वीकार नहीं करता जिससे उसकी स्वच्छंद जीवन शैली प्रभावित हो।[vi] उसकी आवश्यकताएँ अत्यन्त सीमित है इसलिए वह बड़ी–बड़ी परियोजनाओं का विरोध करती है। आदिवासी समाज की सीमित आवष्यकता ही विकसित समाज के लिए चुनौती है।[vii]

आदिवासियों के इन प्राकृतिक संसाधनों का वर्तमान सरकारों द्वारा विकास के नाम पर विभिन्न योजनाओं और परियोजनाओं के माध्यम से दोहन किया जा रहा है, जो कि वर्तमान की आवष्यकता भी है। ऐसा नहीं है कि आदिवासी किसी क्षेत्र, राज्य या देष के विकास के खिलाफ है, वे खिलाफत करते हैं उन बड़ी परियोजनाओं का जिसके कारण उनका व उनके क्षेत्र का अस्तित्व ही समाप्त हो जाएगा। ऐसा नहीं है कि इन संसाधनों के समाप्त होने से मात्र आदिवासी ही प्रभावित होगें, वहाँ निवासरत सभी जीव–जन्तु और वनस्पतियाँ भी प्रभावित होगी और धीरे–धीरे समाप्त हो जाएगी। विकास की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए अत्यधिक मात्रा में इनका दोहन किया जाना मानव–जीवन के साथ–साथ प्रकृति के नियमों के लिए भी भविष्य में खतरा उत्पन्न करता है। पिछले कुछ वर्षों से भारत की परिस्थितिकी तंत्र बदली हुई है। कुछ जगहों में ग्रीष्मकाल का तापमान अल्यधिक बढ़ा हुआ है, वर्षा भी कहीं भी हो जा रही है। यह सब हमारे भविष्य के लिए चिंता का विषय है। इस चिन्तन में एक ही विचार आता है कि पेड़ लगाया जाय। यद्यपि

Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

विष्व सहित भारत देष भी बात के लिए चिन्तित है और प्रत्येक वर्ष विश्व पर्यावरण दिवस के रूप में 25 जून को बड़ी ही धूमधाम से मनाया जाता है। परन्तु मात्र इस एक दिन ही पर्यावरण दिवस मनाकर पेड़–पौधे लगाने से कुछ नहीं होगा। यह प्रक्रिया वर्ष भर प्रत्येक व्यक्ति को मनाने और मूल कर्त्तव्य की तरह पालन करने की आवश्यकता है।

इन परियोजनाओं को वृहद् न बनाकर छोटी–छोटी योजनाओं में क्रियान्वित किया जा सकता है। जिससे बहुत बड़ी संख्या में मानव पलायन या संसाधनों का दोहन न हो और भविष्य में भी इन संसाधनों की उपयोगिता बनी रहे। आदिवासी क्षेत्रों के विकास के लिए आदिम कलाओं तथा कुटीर–उद्योगों को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। उन उद्योगों को प्रोत्साहित किया जाना चाहिए, जिनके माध्यम से आदिवासी अपनी आर्थिक आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं, जैसे–कृषि व वनोपज से संबंधित उद्योग, काष्ठ–कला, घड़वा–कला, लौह–शिल्प, बांस षिल्प–कला, मृतका–कला आदि परम्परागत कलाओं को प्रोत्साहित कर उद्योग का रूप दिया जा सकता है। इससे उन क्षेत्रों के आदिवासियों के साथ–साथ अन्य जातियों का भी विकास होगा और सरकार तथा जनता के मध्य तकरार कम होगा, सरकार और वहाँ के निवासियों के मध्य तकरार कम होने से विकास संभव हो सकेगा।

आदिवासियों की रीति–नीति और परम्पराओं का संरक्षण भी वर्तमान लोकतांत्रिक सरकारों को करना चाहिए यद्यपि छत्तीसगढ़ राज्य सरकार द्वारा आदिम परम्पराओं को पुनर्जीवित करने के लिए बस्तर की प्रसिद्ध घोटुल परम्परा और देवगुड़ियों को प्रोत्साहित किया जा रहा है, जिससे आदिवासियों को अपनी परम्परागत सामाजिक–सांस्कृतिक एवं धार्मिक व्यवस्था को स्थापित करने में सहायता मिल रही है। इसी प्रकार वनोपजों के संग्रह हेतु वन–धन समितियों का गठन कर उसके माध्यम से उचित मूल्य पर वनोपजों को क्रय किया जा रहा है, परन्तु फिर भी बिचौलिए व्यापारियों की घुसपैठ लगातार बनी हुई है, जिसके कारण इन संसाधनों का उचितमूल्य आदिवासियों को प्राप्त नहीं हो रहा है।वस्तुतः आदिवासी क्षेत्रों में नई सामाजिक–आर्थिक आवश्यकताएँ उभर चुकी हैं। अतएव स्थानीय स्तर पर उपलब्ध प्राकृतिक संसाधनों को आधार मानते हुए ग्रामीण–औद्योगीकरण का व्यापक कार्यक्रम प्रारम्भ किया जाना चाहिए। इससे आदिवासी प्राकृतिक संसाधनों का और

Siddhanta's International Journal of Advanced Research in Arts & Humanities
ISSN(O) : 2584-2692
Vol. 1, Issue 2, Nov.-Dec., 2023
Available online : https://sijarah.com/

अधिक संरक्षण कर सकेंगे क्योंकि आदिवासी है, तो जल, जंगल और जमीन है अर्थात् प्राकृतिक संसाधन है। इन्हीं प्राकृतिक संसाधनों के कारणही इस धरती पर जीवन है, यदि जीवन नहीं होगा तो हम पृथ्वी की कल्पना भी नहीं कर सकते। इसी कारण आदिवासियों को प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षक कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं है।

संदर्भ :–

[i] श्रीवास्तव, बी. के., इतिहास लेखन : अवधारणा, विधाएँ एवं साधन, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2007, पृ. 327

[ii] मिश्र उमाशंकर एवं प्रभात कुमार तिवारी, भारतीय आदिवासी, उत्तरप्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी लखनऊ, 1975, पृ. 5

[iii] पूर्वोक्त, पृ. 29–32

[iv] रसेल आर. वी. एवं रायबहादुर हीरालाल द ट्राइब्स एण्ड कास्ट ऑफ द सेन्ट्रल प्रोव्हिसंस ऑफ इण्डिया, मैकमिलन एवं कम्पनी लिमिटेड सेंट मार्टिन स्ट्रीट लंदन, 1916, पृ. 65–66

[v] मजुमदार, डी. एन., रेसेस एण्ड कल्चर्स ऑफ इण्डिया, किताबिस्तान इलाहाबाद, 1944, पृ. 137

[vi] नायडू पी. आर., भारत के आदिवासी, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1997, पृ. 8

[vii] पूर्वोक्त, पृ. 8